IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन सुशासन की अवधरणा एवं घटक तत्व

डॉ0 स्वेता कुमारी
एम॰ ए॰, पीएच॰ डी॰
राजनीति विज्ञान विभाग,
बी॰ आर॰ ए॰ बिहार विश्वविद्यालय,मुजफ्रपफरपुर

सार–संक्षेप :

भारतीय परंपरा में सुशासन की अवधरणा की प्रमुख विशेषता यही रही है कि यहाँ जिनके पर सर्वाधिक विचार किया जाता है। शासन संचालन करने की पात्रात के साथ ही सुशासन का उल्लेख भी होता है। वास्तव में सुशासन का सिद्धांत कितना भी विस्तृत हो उसे साकार तो उन्हें ही करना है जिनके हाथों में यह दायित्व है। इसलिए उनका सुपात्र होना अनिवार्य है। ऐसे सुपात्र व्यक्तियों का समूह ही सुशासन की कल्पना कर सकता है और उसे साकार करने का निष्ठापूर्वक प्रयत्न कर सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि शासन की अवधरणा चाहे जितनी अच्छी हो, अगर शासन संचालन सक्षम व्यक्तियों के हाथों में नहीं है तो वहाँ सुशासन कभी साकार हो ही नहीं सकता, वहाँ जो होगा वह कुशासन ही होगा। राजा या राज्य के अधिकारी जैसे होंगे प्रजा भी वैसी ही होगी। इसलिए वे राजा की योग्यता से लेकर अधिकारियों की नियुक्ति तक का विस्तृत मापदंड पेश करते हैं। इन सबका उद्देश्य राज्य को न्यायपालक एवं सर्वकल्याणकारी बनाना है यही तो सुशासन है। सुशासन के संदर्भ में हमारे राष्ट्रपिता की थी। सच यह है कि भारत का स्वाधीनता संघर्ष केवल अंग्रेजों को भगाने के लिए नहीं था, उसके साथ भारत को विश्व के समक्ष एक आदर्श शासन, आदर्श देश के रूप में साकार करने का लक्ष्य भी था। और हमारे ज्यादातर मनीषियों ने इस दिशा में काफी विचार किया है। इन सबके बीच व्यवस्था के अलग–अलग बिंदूओं पर कुछ मतभेद थे पर मूल कल्पना सुशासन की लगभग एक ही थी। आप पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल आदि का नाम ले सकते हैं। आजाद भारत के लिए उन सबकी कुछ कल्पनाए थी और सबका मूल सुशासन ही था। सत्य और न्याय पर टिकी ऐसी शासन व्यवस्था जो देश के लिए शांति, सुव्यवस्था और सामूहिक भाईचारा का भावनात्मक भाव कायम करे और विश्व को भी सत्य, अहिंसा, नैतिकता और भाईचारे की ओर अग्रसर करने वाले सुशासन के लिए प्रेरित करें।

शब्द कुंजी : सुशासन, सर्वकल्याणकारी ,अर्थशास्त्र ,संघर्ष

भूमिका

राज्य, सरकार और प्रशासन का अस्तित्व ही पर्याप्त नहीं है। महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह है कि राज्य कैसा है, सरकार के और प्रशासन का स्वरूप कैसा है ? क्या इसे 'अच्छी सरकार' अथवा सुशासन कहा जा सकता है? प्राचीन काल में 'सुशासन' को 'आदर्श राज्य' अथवा 'राम राज्य' की अवधरणा के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया गया है।

प्लेटो अपनी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में एक ऐसे आदर्श राज्य का निर्माण करता है जिसकी बागडोर दार्शनिक प्रशासकों के हाथ में है। प्लेटो के अनुसार ''राज्य तभी आदर्श रूप प्राप्त कर सकता है जबकि उसका शासन योग्य, कुशल, ज्ञानी एवं स्वार्थहीन दार्शनिक शासकों के हाथों में हो।'' प्लेटो के समय में एथेन्स प्रजातंत्र के, स्पार्टा सैनिकतंत्र के तथा सिराक्यूज निरंकुशतंत्र के नाम पर लाटरी प्रणाली के आधर पर शासकों का चयन होता था, अज्ञानियों और स्वार्थियों के हाथों में शासन की बागडोर थी। प्लेटो ने व्यंग्य करते हुए यहाँ तक कहा कि बढ़ई और दर्जी होने के लिए भी कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, परन्तु शासक होने के लिए नहीं। अतएव नगर राज्यों को विनाश से बचाने के लिए, मानवता के कल्याण के लिए, शासन से अज्ञान, स्वार्थपरता और अनिपुणता को दूर करने के लिए प्लेटो ने दार्शनिक शासक के सिान्त का प्रतिपादन किया। प्लेटो के शब्दों में 'यदि वे ;दार्शनिक शासक बुद्धिमता और न्याय के नियमों पर चलते हैं और अपनी शक्ति का प्रयोग सबकी सुरक्षा और उत्थान के ध्येय से करते हैं तो वे जिस नगर पर शासन करते हैं और जिस नगर में ऐसी विशेषताएँ पायी जाती हैं, उसी को सच्चे राज्य की संज्ञा दी जा सकती है।' प्लेटो की दृष्टि में ज्ञानी एवं गुणी व्यक्ति को ही शासक बनाया जाना चाहिए। यदि शासन की बागडोर विवेकी, विशेषज्ञ और प्रशिक्षित शासकों के हाथों में हो तो राज्य में सुशासन एवं न्याय की स्थापना स्वतः हो जाएगी।

कौटिल्य ने अपनी कृति 'अर्थशास्त्र' में राजा के ऐसे ऊँचे मानदण्डों का आधर प्रस्तुत किया जिसकी अन्ततोगत्वा परिणति 'सुशासन' में होती है। कौटिल्य के शब्दों में 'यदि राजा संपन्न हो तो उसकी समृद्धि से प्रजा भी सम्पन्न होती है, राजा का जो शील हो, वह शील प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी और उत्थानशील होता है तो प्रजा में भी गुण आ जाते हैं, यदि राजा प्रमादी हो, तो प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। कौटिल्य के राज्य में राजा राजर्षि होता है। उसका जीवन एक तपस्वी की भांति होता है। उसके जीवन का एक–एक क्षण जनकार्य में लगा होता है। उसके अनुसार 'प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा के लिए प्रजा के सुख से भिन्न अपना सुख नहीं है, प्रजा के सुख में ही उसका सुख है।'

सुशासन का प्राचीन में भी अस्तित्व का आधार 'सार्वजनिक हित' की अभिवृति के लिए ही रहा। सार्वजनिक हित की अभिवृद्धि के लिए राज्य कतिपय संस्थाओं का निर्माण करता है। इन संस्थाओं में काम करने वाले लोगों का उद्देश्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय च' होता है। वे कर्तव्य भावना से अभिप्रेरित होकर जनता की सेवा को अपना अभीष्ट बना लेता है। जिससे सुशासन के मूल सुदृढ़ होते है। सुशासन की अवधरणा की प्रासंगिकता वर्तमान समय में काफी बढ़ गया है। आज सभी देशों में सत्ता का दुरूपयोग, घोटाले, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक धन को हड़पने के आये दिन उदाहरण मिल जाते है। अतः सुशासन की अवधरणा ऐसी प्रवृतियों को रोकने वाला एक आकर्षक निदान है। सुशासन की अवधरणा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं –1.भारतीय अवधरणा 2. पाश्चात्य अवधरणा।

1. भारतीय अवधरणा :– भारत के न जाने किने चिंतकों, मनीषियें, राजनेताओं ने सुशासन के बारे में गहन विचार दिया है। हमें यह सच स्वीकार करना होगा कि सुशासन का जितना गहरा और विशद विचार भारतीय मनीषियों ने किया उतना दुनिया में कहीं नहीं हुआ। अलग–अलग प्रश्नों उत्तर में राज्य, राजा, प्रजा, अधिकारी सबके कर्तव्यों का जो वर्णन है वही वस्तुतः सुशासन है। उदाहरण के लिए बाल्मिकी रामायण के कुछ विवेचनाओं को देखिए चौदह वर्ष वनवास न जाने की सलाह पर श्रीराम कहते हैं –

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।

अर्थात् हिंसा रहित सत्य ही राजा का सनातन धर्म है। राज्य सत्यात्मक है, सत्य में ही जगत प्रतिष्ठित है। यानी राज्य सत्य के साथ कभी समझौता न करे और सत्य के प्रतिपालन में हिंसा भी न हो। राज्य का अगर सत्य के साथ आत्मियता नहीं है और वह हिंसक है तो पिफर वह सुशासन नहीं हो सकता। सुशासन की इससे श्रेष्ठ अवधरणा क्या हो सकती है।

महाभारत के शांतिपूर्व में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि 'धर्मानुवर्ती राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपना प्रिय परित्याग कर वही करे जिससे लोकहित हो। यानी जिनके जिम्मे शासन की, जनता के लिए निर्णय करने की जिम्मेदारी है उनके एक–एक कदम एक–एक निर्णय का लक्ष्य केवल लोकहित ही होना चाहिए। उसमें हमारा कोई प्रिय है, अपना है अथवा उसका हित या अहित नहीं। सामाजिक न्याय या वर्तमान शासन के तीनों अंगों कार्यपालिका, विधयिका और न्यायपालिका की निष्पक्षता के लिए इससे बड़ा मापदंड और कुछ हो सकता है क्या ? शांतिपर्व में ही भीष्म युध्ष्ठिर को यह भी कहते हैं कि राजा बिना युद्ध के विजय प्राप्त करे। युद्ध से विजय प्राप्त करना उचित नहीं। इस तरह हिंसा से राज्य को मुक्त रखने यानी सत्य और शांति के आधर पर जो शासन हो वही भारतीय अवधारणा में सुशासन कहा जाएगा।

वेदों में कई प्रकार की राज व्यवस्था का वर्णन है। अथर्ववेद में कहा गया है – विराड् वा इदमग्र आसीत। यानी ऐसा राज जहाँ राजा या कोई शासक नहीं हो। सारी जनता स्वयं अपना प्रबंधन करती हो उसे वैराज्य कहते थे। जरा सोचिए क्या हम आज ऐसे सुशासन की कल्पना कर सकते हैं जहाँ शासक नहीं बल्कि स्वयं जनता समस्त प्रबंध्न करती हो। गाँधी जी ने स्वराज्य को वैदिक शब्द और अवधरणा यूं ही नहीं कहा। स्वराज्य शासन का सविस्तार वर्णन ट्टग्वेद में ही है। लिखा है – व्यचिष्टे बहुपाच्ये स्वराज्ये आ यतेमहि। यानी बहुतों द्वारा जिसका पालन होता है, ऐसे स्वराज्य शासन में हम जनता की भलाई के लिए यत्न करते रहेंगे। इसका अर्थ बड़ा व्यापक है। ऐसा शासन जो विस्तृत व्यापक हो और जिसमें संकुचित भाव नहीं हो। दूसरे शब्दों में जो शासन जनता के प्रत्येक मनुष्य को सुख देने का प्रयत्न करता है, जो संकुचित नहीं है यानी अपना अपने परिवार, रिश्तेदार, जाति, समर्थक और यहाँ तक कि अपने समान विचार वाले के लिए भी पक्षपात नहीं करता है, सभी मनुष्य में एक ही तत्व की भावना से जो व्यवहार करता है वही असंकुचित, व्यापक भाव है। तो वैदिक स्वराज्य में सुशासन का अर्थ संकुचित भाव से रहित एवं बहुसम्मत से राज्य व्यवस्था संचालित करने वाला शासन है।

वास्तव में भारतीय परंपरा में सुशासन की अवधरणा की प्रमुख विशेषता यही रही है कि यहाँ जिनके पर सर्वाधिक विचार किया जाता है। शासन संचालन करने की पात्राता के साथ ही सुशासन का उल्लेख भी होता है। वास्तव में सुशासन का सिद्धांत कितना भी विस्तृत हो उसे साकार तो उन्हें ही करना है जिनके हाथों में यह दायित्व है। इसलिए उनका सुपात्रा होना अनिवार्य है। ऐसे सुपात्र व्यक्तियों का समूह ही सुशासन की कल्पना कर सकता है और उसे साकार करने का निष्ठापूर्वक प्रयत्न कर सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि शासन की अवधरणा चाहे जितनी अच्छी हो, अगर शासन संचालन सक्षम व्यक्तियों के हाथों में नहीं है तो वहाँ सुशासन कभी साकार हो ही नहीं सकता, वहाँ जो होगा वह कुशासन ही होगा। ऐसे असंख्य उदाहरण हमारे

वागंगमय में भरे पड़े हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्रा से सुशासन के दस निर्देशक तत्व प्राप्त होते हैं। कौटिल्य के अनुसार 'राजा राज्य का सेवक है जिसकी अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं होती' वे कहते हैं – राजा का दिल ही प्रजा का शील है। राजा या राज्य के अध्किारी जैसे होंगे प्रजा भी वैसी ही होगी। इसलिए वे राजा की योग्यता से लेकर अधिकारियों की नियुक्ति तक का विस्तृत मापदंड पेश करते हैं। इन सबका उद्देश्य राज्य को न्यायपालक एवं सर्वकल्याणकारी बनाना है यही तो सुशासन है।

भारत ने 26 जनवरी 1950 को संविधान अंगीकार करते हुए सत्यमेव जयते शब्द यों ही नहीं अपनाया। उसके पीछे की कल्पना वही थी कि राज्य यानी शासन हमेशा सत्य के अनुपालन और उस पर विजय प्राप्त करने के लिए ही काम करती रहेगी। स्वतंत्रता के बाद जिनके हाथों भारत के पुनर्निमार्ण का अवसर आया उनसे हमारी आपकी कई मामलों में असहमति हो सकती है, पर वे भारतीय परंपरा में राज्य की शासन की क्या भूमिका होनी चाहिए और सुशासन क्या होगा इसे अच्छी तरह से समझते थे। आधुनिक भारतीय नेताओं और विचारकों में महात्मा गांधी को सुशासन संबंधी भारतीय परंपरा की सोच का वारिस कहा जा सकता है। अलग–अलग समयों और प्रसंगों में स्वराज्य के संबंध में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए, दरअसल वही सुशासन का दर्शन है। उनके कुछ विचारों को देखिए 'स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक सम्मति के अनुसार होने वाला भारत वर्ष का शासन। लोकसम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों के मत के जरिये हो, फिर वे चाहे स्त्रिया हो या पुरूष इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गए हों वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो। सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से ही नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरूपयोग होता हो तब सभी लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। यदि स्वराज्य मिल जाने पर जनता अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिए सरकार का मुह ताकना शुरू कर दें तो यह स्वराज्य किसी काम का नहीं होगा।

हमारे सपनों के स्वराज्य में जाति या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए सबके कल्याण के लिए होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किंतु लूले, लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों–करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी आते हैं। मेरे सपनों का स्वराज्य जो उपभोग राजा और अमीर करते हैं, वही उपभोग गरीबों के लिए भी सुलभ होनी चाहिए, इसमें फर्क के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। लेकिन तुम्हें जीवन की वे सामान्य सुविधाए अवश्य मिलनी चाहिए, जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिलकुल भी संदेह नहीं है कि हमारा तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक वह तुम्हें ये सारी सुविधाए देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता। किसी भी सुशासन का स्वरूप ऐसा ही हो सकता है।

गांधी जी के विचारों को थोड़े शब्दों में समेंटना हो तो कहा जा सकता है कि ऐसा शासन जो लोक सम्मति से चले जो सबके कल्याण के लिए काम करे, जिमसें सत्ता पर कुछ मुट्ठी भर लोगों का कब्जा न हो, जहाँ लोग हर चीज के लिए राज्य मुखापेक्षी न हों, जिमसें समाज के निचले तबके को भी कुछ जीवन की आवश्यक सुविधएँ उपलब्ध हों, या जो उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्नशील हो। किंतु इन सबमें गांधी जी के सुशासन की मूल भारतीय कल्पना सत्य, अहिंसा और नैतिकता को प्रमुख स्थान देती है। वे लिखते हैं, 'मेरी कल्पना का स्वराज तभी आएगा जब हमारे मन में यह बात अच्छी तरह जम जाए कि हमें अपना स्वराज सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना है, उन्हीं के द्वारा उसका संचालन करना है और उन्हीं के द्वारा उसे कायम रखना है। सच्ची लोकसत्ता या जनता का स्वराज कभी भी असत्य और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। कारण स्पष्ट और सीधा है, यदि असत्य यह होगा कि सारा विरोध या तो विरोधियों को दबाकर या उनका नाश करके, खत्म कर दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक स्वतंत्रता को प्रकट होने का पूरा अवकाश केवल विशुद्ध अहिंसा पर आधरित शासन में ही मिल सकता है।'

इतनी गहरी कल्पना सुशासन के संदर्भ में हमारे राष्ट्रपिता की थी। सच यह है कि भारत का स्वाधीनता संघर्ष केवल अंग्रेजों को भगाने के लिए नहीं था, उसके साथ भारत को विश्व के समक्ष एक आदर्श शासन, आदर्श देश के रूप में साकार करने का लक्ष्य भी था। और हमारे ज्यादातर मनीषियों ने इस दिशा में काफी विचार किया है। इन सबके बीच व्यवस्था के अलग–अलग बिंदूओं पर कुछ मतभेद थे पर मूल कल्पना सुशासन की लगभग एक ही थी। आप पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल आदि का नाम ले सकते हैं। आजाद भारत के लिए उन सबकी कुछ कल्पनाए थी और सबका मूल सुशासन ही था। सत्य और न्याय पर टिकी ऐसी शासन व्यवस्था जो देश के लिए शांति, सुव्यवस्था और सामूहिक भाईचारा का भावनात्मक भाव कायम करे और विश्व को भी सत्य, अहिंसा, नैतिकता और भाईचारे की ओर अग्रसर करने वाले सुशासन के लिए प्रेरित करें। कहने का अर्थ यह है कि भारत के सुशासन का लक्ष्य केवल देश तक सीमित नहीं था। इसका वैश्विक लक्ष्य भी था। पंडित नेहरू ने आजादी के बाद से विश्व स्तर पर तीसरी दुनिया के साथ गठबंधन बनाने की जो कोशिशें की वह भारत के उसी सार्वभौमिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होना था। शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का सिद्धांत वैश्विक सुशासन के लिए ही तो था। सुशासन की भारतीय अवधरणा निर्विवाद रूप से नागरिकों के जीवन के अधिकार, स्वाधीनता और उनकी खुशियों से जुड़ी है।

2. पाश्चात्य अवधरणा :– सुशासन शब्द से ही उसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है इसलिए इसका अलग से बहुत ज्यादा विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं। किंतु यह अर्थ नहीं कि सुशासन की कल्पना में भी एकरूपता है। यह आवश्यक नहीं कि सुशासन की जो कल्पना हमारी हो वही दूसरे की भी हो। इसी तरह एक देश या राज्य के लिए सुशासन के सारे अभिकरण दूसरे देश या राज्य के लिए उसी रूप में उपयुक्त हों, यह आवश्यक नहीं है। हाँ, उसकी मूल कल्पना यानी शत–प्रतिशत लोकहित को समर्पित और लोगों के साथ अपनत्व का भाव पैदा करने वाली जो भी राज्य व्यवस्था होगी वह सुशासन की श्रेणी में आएगी। सामान्यतः यह अंग्रेजी के 'गुड गवर्नेस' शब्द के हिंदी रूपांतर के रूप में प्रयुक्त होता है। यह शब्द वर्तमान लोकतंत्रा के साथ अभिन्न है। हम जिस वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में रहते हैं वह अंग्रेजी के 'डेमोक्रेसी' शब्द का हिंदी रूपांतर है और इसका उदभव भी पश्चिम के देश हैं, इसलिए हम इस लोकतंत्रा के साथ उनसे जुड़े दूसरे शब्द भी उसी अनुरूप लेते हैं। इस समय सुशासन की ज्यादातर अवधरणाएँ और विचार विश्व के पश्चिमी विकसित देशों को आदर्श बनाकर पेश करती है।

यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य, राजा, न्याय व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अरस्तु के चिंतन के राज्य, संविधन, कानून, शासक, नागरिक आदि का उस समय के संदर्भ में विशद वर्णन है। अरस्तु की कुछ पंक्तियों पर नजर दौड़ाइए – 'राज्य कुलों और ग्रामों का एक ऐसा समुदाय है जिसका उद्देश्य पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति है।' राज्य का उदय जीवन के लिए हुआ और सद्जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है। राज्य एक सकारात्मक अच्छाई है, अतः इसका कार्य बुरे कामों अथवा अपराधें को रोकना नहीं वरन मानव को नैतिकता और सदगुणों का मार्ग पर आगे बढ़ाना है। आज के संदर्भ में प्लेटो एवं अरस्तु के राज्य और शासन संबंधी विचारों की आलोचना होती है, लेकिन सुशासन की दृष्टि से उनके दर्शन के अनेक पहलूओं की प्रासंगिकता हर काल में बनी रहेगी। इसके बाद हॉब्स, लॉक, रूसों, बेंथम, मिल एक लंबी श्रृंखला उन विचारकों और नेताओं की है जिन्होंने अपनी दृष्टि से और तत्कालिन स्थान समय और परिस्थतियों के अनुसार सुशासन की कल्पना की है।

रिपब्लिक की रचना करने का प्लेटो का उद्देश्य 'कुशासन' का अन्त करना था। तत्कालीन यूनानी नगर राज्यों में शासक वर्ग द्वारा शासन शक्ति का प्रयोग खुलेआम अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए किया जाता था। इस वर्ग संघर्ष का फल कुशासन के रूप में प्रकट होता था। इसका मुख्य कारण राज्य की तरफ से किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रदान किये जाने की व्यवस्था का न होना था। फलस्वरूप अपनी संतानों को शिक्षित करने का

व्यय माता–पिताओं को स्वयं उठाना पड़ता था। शिक्षा बहुत महंगी थी। अतः शिक्षित होकर वे शासन के माध्यम से व्यय ध्न पुनः प्राप्त करने की चेष्टा में लगे रहते थे। इस तरह कुशासन निरन्तर बना रहता था। अतः प्लेटो शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था राज्य की ओर से स्थापित कर इस दुर्गुण को समाप्त करना चाहता था। प्लेटो ने अपने महान ग्रन्थ की रचना कुछ निश्चित व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति को लेकर की थी। वह इसके माध्यम से सोपिफस्ट विचारकों द्वारा प्रतिपादित आत्म तृप्ति के सिद्धांत को गलत और झूठा सिद्ध करना चाहता था जिसे भ्रष्टाचारी और जनतंत्राी दोनों प्रकार के राज्यों ने अपना लिया था। प्लेटो ने इस निरंकुश व्यक्तिवाद का विरोध किया और उसके स्थान पर राज्य के जैविक रूप का प्रतिपादन किया और यह बताया कि एक व्यक्ति के लिए न्याय अपने उस कर्तव्य का पालन करता है जिसके लिए उसे प्रशिक्षण देकर योग्य बनाया गया है तथा जिसकी पूर्ति से सम्पूर्ण समाज का हित साधन होता है। वह यह प्रतिपादित करना चाहता है कि राज्य और व्यक्ति के हित में कोई संघर्ष नहीं है तथा न्यायी एवं बुद्धिमान शासक वही है जो जनकल्याण के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने में ही आनन्द का अनुभव करता हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लेटो का अपने महान ग्रन्थ 'रिपब्लिक की रचना का मूल उद्देश्य समाज में व्याप्त हिंसक स्वार्थपरता, वर्ग संघर्ष एवं कुशासन जैसे रोगों का उपचार करना और समाज को उनसे मुक्त कर उसे स्वस्थ और आदर्श रूप प्रदान करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने राजनीतिक शक्ति को निःस्वार्थ और जनहित की भावनाओं से पूर्ण व्यक्तियों के हाथों में सौंपने का प्रस्ताव किया जिससे वर्ग–संघर्ष और राजनीतिक स्वार्थपरता का रोग दूर हो जाये। उसका यह विचार उसकी दार्शनिक राजाओं द्वारा शासन की प्रसिद्ध धरणा सुशासन अभिव्यक्त हुआ है।

इसी प्रकार पाश्चात्य सुशासन की अवधरणा में हम अरस्तु और लॉक के विचारों को भी समझ सकते है कि उस समय पाश्चात्य अवधरणा सुशासन के प्रति क्या था। अरस्तु के विचार को मानव शरीर के उदाहरण से समझा जा सकता है। मानव शरीर में हाथ, पैर, नाक, कान आदि अनेक अंग होते हैं, इन अंगों को अलग–अलग कार्य करने पड़ते हैं और इन्हें करने के लिए वे शरीर पर निर्भर रहते हैं। यदि शरीर का कोई अंग अपना कार्य करना बंद कर देता है या उसे ठीक प्रकार से नहीं करता है तो शरीर निर्बल हो जाता है। जो बात शरीर के बारे में कही गई है, वही राज्य के बारे में भी कही जा सकती है। जिस प्रकार शरीर का विकास स्वाभाविक ढंग से होता है, उसी प्रकार राज्य का भी हुआ है। शरीर के समान राज्य भी अनेक अंगो से मिलकर बना है। ये अंग है – व्यक्ति और उसकी संस्थाए, परिवार, ग्राम आदि। जिस प्रकार शरीर के सब अंगों को अपने–अपने निर्धरित कार्य करने पड़ते हैं, उसी प्रकार राज्य के सब अंगों को भी अपने निर्धरित कार्य करने आवश्यक है। इस प्रकार अरस्तु के राज्य की उत्पति सम्बन्धी विचार सुशासन सिद्धान्त के अनुरूप है। लॉक वैधनिक राज्य की अवधरणा का प्रतिपादन करता है। जिसके अन्तर्गत 'विधि के शासन' को अपनाया गया है, मनमाने शासन को नहीं। लॉक की मान्यता है कि जहाँ मनुष्य अनिश्चित अज्ञात एवं स्वेच्छाचारी इच्छा के अधीन रहते हैं, वहाँ उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव शासन का संचालन उद्घोषित, ज्ञात एवं स्थायी कानूनों द्वारा होना चाहिए, न कि बिना पूर्व योजनाओं की तत्क्षणकृत आज्ञप्तियों द्वारा। लॉक राज्य में विधि को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है और शासक एवं शासित दोनों को समान रूप से उचित विध्यिों के पालन का निर्देश देता है। लॉक के शब्दों में 'जहाँ कानून का अन्त होता है वहाँ अत्याचार प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि लॉक शासन द्वारा स्वविवेकी और संकटकालीन शक्तियों के प्रयोग को स्वीकार करता है, लेकिन उसका कथन है कि ये शक्तियाँ विधि के शासन की पूरक है, विकल्प नहीं। अतः शासक के द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग अपवाद रूप में और विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत ही किया जाना चाहिए। संक्षेप में, वैधनिक राज्य का विस्तार लॉक की बहुत बड़ी देन है।

लॉक के राज्य सम्बन्धी विचारों की विशेषताओं से राज्य में सुशासन के स्वरूप की झांकी मिलती है। लॉक का राज्य उदारवादी है क्योंकि वह जन–सहमति पर आधरित है, वह जन–कल्याण का साधन है, वह सीमित है, वह वैधनिक सहिष्णु और निषेधत्मक है। जो सुशासन के तमाम पहलू को स्थापित करता है।

संदर्भ स्त्राोत :–

[1] डॉ. बी. एल. फाड़िया – 'लोक प्रशासन' – पृ.सं.–769

[2] वही पृ.सं.–770

[3] योजना – जनवरी, 2013 – पृ.सं.–41

[4] वही पृ.सं.–42

[5] डॉ. बी. एल. फाड़िया – 'राजनीति विज्ञान' – पृ.सं.–40

[6] वही पृ.सं.–67

[7] डा. ए.डी. आर्शीवादम् एवं कृष्णकान्त – 'राजनीति विज्ञान' – पृ.सं.–605

[8] योजना – अगस्त, 2013 – पृ.सं.– 46–47

[9] प्रतियोगिता दर्पण – पफरवरी, 2015 – पृ.सं.–105

[10] भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका – जनवरी, 2012 – पृ.सं.–19